# ॥ सतीनाटक ॥

जिसको

उदितनारायण वकील ज़िला गाज़ीपुर

ने

श्रीयुत बाबू मनमोहनबसू कृत

बङ्गभाषा की पुस्तक से शुद्ध आर्य्यभाषा में

रसिकजनों और आर्य्यभाषाहितैषियों के

विनोदार्थ अनुवाद किया ।



॥ काशी ॥

भारतजीवन यन्त्रालय में मुद्रित ।

सन् १८८९ ई० ।

# ॥ सतीनाटक ॥

जिसको

उदितनारायण वकील ज़िला गाज़ीपुर

ने

श्रीयुत बाबू मनमोहनवसू कृत

वङ्गभाषा की पुस्तक से शुद्ध आर्य्यभाषा में [illegible]क-
जनों और आर्य्यभाषाहितैषियों के विनोदार्थ
अनुवाद किया ।



## काशी

भारतजीवन यन्त्रालय में बाबू रामकृष्ण
वर्म्मा द्वारा शोधित और मुद्रित हुआ ।

सन् १८८९ ई० ।

मूल्य ॥/

## निवेदन।

अपांनिधिं वारिभिरर्चयन्ति ।
दीपेन सूर्य्यं परितोषयन्ति ॥
ताभ्यां तयोः किं परिपूर्णता स्यात् ।
भक्त्यैव तुष्यन्ति महानुभावाः ॥

प्रिय पाठकगण !

कहिये फिर अधिक लिखने की आवश्यकता ही क्या है, यह तो दृढ़ आशा है कि आप लोग आद्योपान्त इस पुस्तक को पढ़ कर मेरा परिश्रम सफल कीजियेगा ! मैं कवि नहीं, पण्डित नहीं, केवल एक वकील हूं फारसी और उर्दू भाषा से जीवन वृत्ति है, किन्तु जब से मुझे कुछ २ परिज्ञान हुआ देश और मातृभाषा की दशा पर दृष्ट पड़ी, सर्वदा इसका ध्यान रहा कि मातृभाषा का जानना, उसकी उन्नति की चेष्टा करना अपना परम धर्म्म है, यद्यपि मैं विशेष कार्य्य के रोध से एकाग्र हो कर इस ओर ध्यान न दे सका किन्तु किसी २ उपाय से कुछ २ अपना समय आर्य और बंगभाषा के पठन पाठन में व्यतीत किया जिसका फल यह है कि आज यह बंगभाषा का अनुवाद आर्य्यभाषा में करके आपकी सेवा में अर्पण करता हूं। महाशय! अभ्यास करने से क्या नहीं हो सक्ता, देखिये, हमारे बङ्गदेशनिवासी भाइयों ने बंगभाषा की कितनी उन्नति की है, किस विद्या की पुस्तक इस भाषा में निर्मित नहीं?

यदि हमारे विद्वान आर्य्यगण मात्र सभी इस ओर ध्यान दें तो कौन सी भाषा है कि जिसके पण्डित भारतवर्ष में नहीं हैं? और जिसका अनुवाद आर्य्यभाषा में नहीं कर सकते? और आर्य्यभाषा को बंगभाषा के तुल्य नहीं बना सकते? भारतेन्दु श्री बाबू हरिश्चन्द्र के स्वर्गवास प्राप्त होने से यद्यपि एक मात्र मुख्य सहायता इसकी न्यून हो गई परंतु अब श्री बाबू रामकृष्णवर्म्मा बनारस, श्रीराधाचरण गोस्वामी मथुरा, बाबू बद्रीनारायन चौधरी मिर्जापुर, राजा रामपालसिंह कालाकांकर पं॰ मदनमोहनमालवीय प्रयागनिवासी पंडित प्रतापनारायण कानपुर, सारसुधानिधि और हिन्दीप्रदीप के सम्पादक प्रभृति परमोत्साही उपस्थित हैं तो दृढ़ आशा है कि आर्य्यभाषा भी अपने पूर्ण उन्नति की सीमा पर थोड़े ही दिवस में पहुंच जायगी—अब हम अपने पूज्यपाद ब्राह्मण और उर्दूभक्त कायस्थ भाइयों से सविनय निवेदन करते हैं कि अपने मातृभाषा की ओर कृपाकटाक्ष करें और बंगाली ग्रन्थकर्ता महाशयों से भी करबद्ध प्रार्थना है कि श्रीयुत बाबू मनमोहनबसु के समान बंगभाषा की पुस्तकों के अनुवाद की आज्ञा उदारता पूर्व्वक दे दिया करें जिससे आर्य्यभाषा की भी उन्नति हो।

अनुगृहीत

उदितनारायणलाल

वकील कलक्टरी—गाज़ीपुर।

श्री:

# पात्र गण ।

## पुरुष ।

दक्ष………………… …………………राजर्षि ।
शिव…………… कैलासनाथ और दक्ष के जामाता ।
नारद… …… ………ब्रह्मर्षि और दक्ष के भ्राता ।
शान्तिराम…………………………नारद का शिष्य ।
सभापाल………… राजर्षि दक्ष का कार्य्याध्यक्ष मन्त्री ।
नगरपाल……………………प्रधान शान्तिरक्षक ।
नन्दी……………………………शिव का अनुचर ।
एक वैष्णव, एक शैव, दो द्वारपाल, नट, प्रतिहारी इत्यादि ।

## स्त्री गण ।

प्रसूती……………………………राजमहिषी ।
सती……………कनिष्ठा राजकन्या और शिव पत्नी ।
अश्विनी, आश्लेषा, मघा ………राजकन्यागण—सती की सहोदरा ।
सनका…………………………प्रसूती की परिचारिका ।
जया, विजया ……………………सती की परिचारिका ।
नटी

संयोगस्थल—दक्षनगरी और कैलासपर्वत ।

# प्रस्तावना ।

( नेपथ्य में मंगलाचरण गीत )

रागिनी ईमनकल्याण—ताल चौताला ।

जै जै शिव संकटविनाशन बरद वीर भवभयभीर पीर भक्तन हरैया हो ॥ १ ॥ आदि देव तुमहीं ते थिति है च-राचर की उद्भव पराभव के कारण करैया हो ॥२॥ भ्राजत विभूति अंग भूषन भुजंग भग लोचन ललित रंग गंग के धरैया हो ॥ ३ ॥ सुर औ असुर सेव जानत न कोउ भेव औढर ढरन देव दारिद हरैया हो ॥ ४ ॥ कंठ मौलिमाल सोह सीस पे जटा विशाल चन्द्रमा उदित भाल भद्र के भरैया हो ॥ ५ ॥

नट—प्रिये, जब यह निमंत्रित सामाजिक गण सभा में उपस्थित है तो फिर सूत्रधार की आज्ञा पालन में क्या विलम्ब है ?

नटी—वह आज्ञा तो सिर पर है ! किन्तु यह तो कहा नहीं कि आज किस विषय के अनुष्ठान की आज्ञा है ?

नट—शास्त्रोक्त किसी असामान्या पतिव्रता का गुण-गान हो।

नटी—( सोचकर ) तो सावित्री का ।

नट—इस राजधानी में तो वह अभिनय पुराना हो गया है ।

नटी—तो सीता अथवा दमयन्ती का ?—

नट—वह सब भी बार बार हुआ है !

नटी—तो चन्द्रकुलवधू द्रौपदीका अभिनय क्या मन्द है ?

नट—उसमें तो खुटाई है ।

नटी—खुटाई क्या है ? जिसका नाम प्रातः स्मर्ण करना मंगल है (१) भला उसके अभिनय में खुटाई ?

नट—( सहास्य ) और कुछ नहीं, केवल एक समय आम के बनमें आम के फल की कथा कहने में पांच पति के अतिरिक्त एक और पति की इच्छा ( २ ) उसको रही इसी कारण भय होता है कि हमलोगों के वर्तमान संकल्प में न्यूनता होगी ।

नटी—तो मर्त्यलोक को छोड़ दो—सतीकुलईश्वरी इन्द्राणी की कथा—

---

(१) श्लोक—अहिल्या द्रौपदी तारा कुन्ती मन्दोदरी तथा
एतानि पंच नामानि प्रातःकाले स्मरे तु यः ।
तस्य पापानि नश्यन्ति परमायुर्भवेश्वरः ।

(२) यह कथा महाभारत में सविस्तर है ।

नट—(अट्टहासपूर्वक) हह ! ढूंढ़ते २ क्या उत्तमा सती पाई

नटी—( क्रोध से ) क्या जगतप्रसिद्ध "शची" सती नहीं है ?

नट—प्राय: तुमारी सदृश !

नटी—क्या हमारे सदृश ?

नट—और क्या ? जब कोई इन्द्र से बल पूर्वक स्वर्ग के सिंहासन पर अधिकार कर लेता है तो शची तुर्त उस की बामाङ्गी हो जाती हैं ऐसे ऐश्वर्यप्रिया भोग बिलासिनी को पतिप्राणा यदि नहीं कहेंगे तो तु· मारा मन कैसे उत्साहित होगा ?

नटी—(अभिमान पूर्वक) सभा में ऐसी तुच्छ बात ! जहां ऐसा अपमान वहां मुझे बोलने की आवश्यकता क्या है ? और मैं रहूंगी भी नहीं ! भला यह तो कहो कि कब ऐश्वर्य २ कर मैंने कर तुमको दुःख दिया है ? तुमने कैसे मुझको ऐसी भोगविलासिनी जाना कि शची से उपमा दिया ! ( सरोदन ) और यहां मेरे रहने का क्या फल है ? ( जाने को उद्यत होती है )

नट—( हाथ पकड़ कर विनयपूर्वक ) प्रिये मैंने नहीं समझा था, मुझ से अपराध हुआ ! यह अभिमान तुम कर सकती हो, शची से तुमारी तुलना, करना निस्सन्देह तुमारा अपमान है, किन्तु अब ऐसा काम नहीं करूंगा ! अब क्रोध मत करो ! जो हुआ सो

हुआ, अब फिर सोच कर और किसी सती का नाम लो !

नटी—और किस का नाम लूं यद्यपि एक का स्मरण होता है परन्तु फिर कहने की इच्छा नहीं हं तो, यदि नाम लूंगी तो फिर तुम ऐसाही ठट्ठा करोगे ?

नट—न, न, न, मैं शपथ करके कहता हूं अब ठट्ठा नहीं करूंगा नहीं करूंगा नहीं करूंगा । तीन वार सत्य करके कहा, अब कहो ?

नटी—मैं कहतीहूं, कि कामदेव की स्त्री रति के समान और कोई सती नहो है ! उसने पति के निमित्त दास्यवृत्ति स्वीकार की थी !

नट—मन्द तो नही है ! परन्तु वह भी आसामान्या नही कही जासकती ऐसे प्रेमी पति के रमणीय शरीर को भस्म होते देखकर भी जिसका हृदय विदीर्ण नहीं हुआ, उसका फिर सतीत्वही क्या ? किसी ऐसे अनुपमा पतिप्राणा का माहात्म्य होना चाहिये कि जिसके सुनने से विदेशीयों को आश्चर्य, स्वदेशीयों को भक्ति, वालिका को शिक्षा, युवती को चैतन्यता और वृद्धा को अनुताप हो।

नटी—सोतो अति उत्तम है ! पर ऐसी है कौन ?

नट—है, है, स्मरण होतो है; जो कन्यारत्न दक्ष प्रजापति

के कुल को उज्वल करके कैलासनाथ की हृदय-मणि हुई जिन्होंने सतीत्वप्रभाव से त्रिभुवन को उज्वल किया जिसकी महिमा की मधुर कथा ऋषि मुनि गान करके कृतार्थ होते हैं आज उसी सती कुलेश्वरी निष्कलंक सती का पवित्र चरित्र कीर्तन कर के जीवन सफल करें!

नटी—हां, हां, प्रसूती की कन्या सती यथार्थ सती है, किन्तु उनके माहात्म्य की कथा का कोई नाटक" हुआ है कि नहीं, सोतो मैं नही जानती!

नट—क्यों नही हुआ है; एक सतीभक्त ने "सती नाटक एक नवीन दृश्य काव्य रचना करके मुझको अर्पण किया है, उसमें तो वही पवित्र कथा है और कुछ नहीं है—

नटी—तो वही हो।

नट—तुमारे अनुमतिही की तो देरथी ।

नटी—अब जी मत जलावो चलो!

नट—इसके पहिले एक गीत गाई जाती तो अच्छा होता। किस यत्न से तुमने यह सगीत विद्या अभ्यास किया है और ऐसे उत्तम सभा को प्रसन्न नही कर सकतीं तो फिर उसका क्या फल ?

नटी—तो क्या गावें?

नट—तुमतो तुर्त रचना कर सकती हो अभिनय के अनुसार कोई गीत गाओ तो उत्तम होगा।

( नटीकीगीत )

( रागिनी ईमन कल्याण ताल तिताला )

अहै प्रसूतीप्राननन्दिनी तेहि समान दूजो कोउ नाहीं। दच्छ प्रजापति कुलसरवर में विकसी नवनलिनी जगमाहीं॥ सुमन सतित्व सुगंध प्रीतिरस देखि मधुप मन शिव ललचाहीं। उभय मुदित मन उदित सुमेरहि जेहि सुमिरत भव ताप नसाहीं॥

पटाक्षेप।

# सतीनाटक ।

## प्रथम अंक ।

( प्रथमगर्भाङ्क )

दक्षनगरी—राजपथ

( एक वैष्णव और एक शैव उपस्थित हैं )

वैष्णव—भला यह तो कहो भाई, राजपुरी में इतना धूम धाम क्यों है ? आज दो दिन से देखता हूं कि शिल्पकार और अनेक प्रकार के व्यवसायी लोग आते जाते हैं; और राजकर्मचारीगण भी महाव्यस्त देख पड़ते है; इसका क्या कारण है ? ।

शैव—हमतो भाई और कुछ नहीं जानते—त्रिकाल संध्या और केवल शिव की पूजा और उसी आदि देव महादेव के महावाक्य तंत्रशास्त्र के अवलोकन से समय व्यतीत करते हैं ।—

वैष्णव—( अट्टहास्य पूर्व्वक ) भाई तुम्हारी बात पर तो हँसी आती है ! क्या पूजा अर्चा करने वालों को राज्य का शुभाशुभ तत्व जानना और संसार के काम काज में रहना निषिद्ध है क्या हम लोग परमेश्वर का नाम नहीं लेते, पूजा नहीं करते ? और

कौन भद्र पुरुष है जो पूजा अर्चा और शास्त्र चर्चा नहीं करता ? भला ऐसी निडर और अंड्प्पन की बात कौन कहता फिरता है ?

शैव—( सकोप ) तुम लोग तो धर्मद्वेषी और पाषंडी हो, इसी से एक सामान्य विषय का अवलम्ब लेकर छलपूर्वक विवाद करना चाहते हो ! मैंने क्या कहा और तुमने क्या समझा ?

वैष्णव—क्यों ? बहुत अच्छा समझा;—तुमारे मतमें तो गाल और काँख बजाने और अग्राह्य तंत्रालोचना के अतिरिक्त इस संसार में मनुष्य का कोई दूसरा कर्तव्य कर्महो नहीं है ! जिस देवता का आधार तमोगुण है उस के उपासक के मुँह से ऐसी सात्विक वार्ता अच्छी नहीं मालूम होती ! हां यदि ऐसी बात किसी सतोगुणावलम्बी वैष्णव चूड़ामणि के मुख से निकलती तो अवश्य शोभा देती !

शैव—तुम अति नीच और ज्ञान शून्य हो ! इसी कारण ऐसी बात कहते हो ! जो योगीश्वर, और त्रिलोक के ऐश्वर्य्य का अधीश्वर होकर भी अपनी इच्छा से श्मशान वासी बने हैं, और जिसने अमृत को भी तुच्छ करके त्रिलोक की रक्षा के निमित्त कंठ में हालाहल धारण किया है, जो पूर्ण ब्रह्मानन्द से परि

पूर्ण होने पर भी आशुतोष है; जो त्रिगुण से परे हो कर भी केवल त्रिभुवन के हितार्थ तमोगुणी बना है भला उस के सेवक के उदासीन भाव को तुम क्या समझोगे? क्या जितना विवेक और बुद्धि है वहसब केवल उसी वृन्दावनविहारी सोरह सौ गोपियों के वल्लभ परम भोगी श्रीमान् कृष्ण भगवान के उपासक ही के लिये है?

वैष्णव—क्यों व्यंगबोलते हो! जटा त्रिशूल और भस्मधारी हो कर श्मशान में भेष बनाने से कोई भोग से विरक्त नहीं हो सकता।—तुम लोगों के दिगम्बर महाराज यदि भोग का स्वाद कुछ नहीं जानते तो हम लोगों के प्रजापति महाराज दक्ष के त्रिलोक सुन्दरी कन्या से क्यों विवाह किया? तुमतो उन्हीं के उपासक न हो? तो फिर सात आठ पुत्र और कन्या तुमारे कैसे हुये? और फिर भी कीतने होंगे।

शैव—दूरहो हतभाग्य मूर्ख! अभीतक तुझ को ह्रस्वदीर्घ का ज्ञान तो हुआही नहीं, औरशास्त्रार्थ करने चला है दुष्ट! क्या कहने को और क्या कहता है। धानकी कुटिया महादेव की गीत—। क्योंरे मूर्ख बतला तो सही कि स्त्रीग्रहण से धर्मविग्रह कैसे हुआ?

वैष्णव—( अट्टहास्य पूर्वक ) ह ! ह ! ह ! कलेजे में चोट लगती है ! जैसे सांप पूंछ दबाने पर बहुत फुफुकारता है, तूभी वैसेही गरज रहा है ! भग्नग्रीव होकर वैष्णव लोगों से वादाविवाद ! बवने को चन्द्रमा पकड़ने की चेष्टा ! समझे हो कि सिर हिलाकर गाल बजाकर और गाली देकर जीत जाओगे। अरे पाखंडी ! स्त्रीग्रहण तो गृहस्थ का धर्म है, यह तो हम लोग भी कहते हैं, जो मनुष्य स्त्री रखकर गार्हस्थ करे उस के मुख से ( व्यंगस्वर से मुंह चिढ़ा कर ) ऐसी बात निकले कि हम संसार को दूसरी नहीं जानते। यह कैसी भडप्पन की बात है। दूरहो पापिष्ट के संग वार्तालाप से भी दोष है, और उसका मुंह देखना भी पाप है ! न जानें आज किस नष्ट का मुंह देख कर उठाथा, जिससे ऐसे असाधु का संग हुआ ( स्वगत ) इधर और कोई आताभी नहीं ! कि उसके साथ कुछ सदालाप करके मन प्रसन्न करें ! हां वह सभापाल और नगरपाल आरहे हैं, और इसी ओर आते भी हैं ! अच्छाहुआ। एक किनारे खड़े हो जावें तो अच्छा है जान पड़ता है कि आपस में कुछ राजगृह की बात चीत कर रहे हैं, यदि ऐसा है तो हमको भी सब ज्ञात हो जायगा !

( सभापाल और नगरपाल का प्रवेश )

नग०—क्यों भई भला आज राजा के ऐसी कठोर आज्ञा के प्रदान का क्या कारण है? शैव सम्प्रदाय तो राजा के प्राणतुल्य प्रिय और देव तुल्य पूज्य थे उन लोगों पर हठात् आज इतना क्रोध क्यों हो गया? जिनके सुख के निमित्त सदा यत्न करते थे आज मुझको उन्हें बालवृद्ध सहित नगर से बाहर करने की आज्ञा दी है बड़े आश्चर्य की बात है!

शैव—महाशय—नमस्कार! आप ने जो कहा सो तो कभी नहीं हो सकता! आप भूलते हैं! राजा स्वयम् शैव हैं और शैव दल भी उनको प्राण समान है, उसी शैव दल के ईश्वर श्रीमहादेव जी को उन्होंने कन्यादान दिया है, भला वे कभी शैवद्वेषी हो सकते हैं? जान पड़ता है कि उन्होंने वैष्णवदल को निकालने को कहा है! उन्होंने कहा कुछ और आप ने सुना कुछ!

वैष्णव—अरे मूर्ख यह कभी हो सकता है? जैसे ऊँट को दूरही से जल का हाल जान पड़ता है वैसेही राजा के इंगित करने से राज्यकर्मचारी लोग राजा का गूढ़ अभिप्राय समझ सकते हैं ऐसे राज्यकर्मचारियों से क्या कभी भूल होसकती है? इस समय शैव

दल को जितना अहंकार हुआ है क्या उसको रा-
जर्षि नहीं जानते हैं? धर्म के भेष में वे लोग जो
जो अधर्माचरण करते हैं क्या उसको वह नहीं जा-
नते? कोई बामाचारी कोई बेश्याचारी कोई असु-
राचारी है आज कल ऐसे २ बहुतेरे घोर अनाचारी
हो रहे हैं इन सभों के राज्य में रहने से क्या पृथ्वी
अन्न देगी? क्या मेघ बरसेगा ? वरन वृक्ष का फल
और नदी का जल भी हरण हो जावैगा। गऊ दुग्ध-
हीन होजांयगी अकाल मृत्यु से प्रजा सब नष्ट हो
जावेगी इस से भयानक अमंगल की आशंका है।
हमलोगों के भविष्यदर्शी अपक्षपाती प्रजापति क्या
फिर निश्चिन्त बैठ सकते हैं ? जब वह प्रजापालन
का भार लिये हैं, तो प्रजागण के हितार्थ, वह इसी
कठोर निर्वासन नियम द्वारा दुष्टों का दमन करैंगे,
फिर इससे अच्छा क्या होगा? और इससे छोटे बड़े
सब प्रसन्न होंगे। नगरपाल महाशय! यह मनुष्य
एक नष्ट शैव है, राजाज्ञापालन इसी से क्यों नहीं
आरम्भ करते ?

नग०—अरे भाई ऐसा नहीं।

शैव—मैंने जो कहा वही!

नग०—जो आज्ञा, हमारे पूछने का जो मूल है वह स्मरण
रहना चाहिये।

सभा०—स्थिर होजाओ, एक बात कहता हूं उसी से सब का उत्तर हो जायगा।

सब लोग —जो आज्ञा कहिये न।

सभा०—हमलोगों के बुद्धिमान राजर्षि भृगुमुनि के यज्ञ में गये थे वह तो आपलोग जानते ही हैं?

सबलोग—जी हां।

सभा०—वे जब उस यज्ञसभा में गये, तब ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, चन्द्र इत्यादि देवता और नाग, नर, गन्धर्व, लोक के प्रधान २ लोग उस सभामें उपस्थित थे। प्रजापति को देख कर वे सब लोग सन्मानार्थ उठ कर खड़े हो गये, नमस्कार भी किया, किन्तु केवल ब्रह्मा विष्णु महेश नहीं उठे। इसी से शिव के ऊपर क्रोध हुआ है!

शैव०—क्यों, क्यों, जब तीनों व्यक्ति नहीं उठे तो एकही पर क्रोध क्यों?

सभा०—आः इसका भाव नहीं समझा? ब्रह्मा पिता होते हैं, वे तो उठ नहीं सकते, और विष्णु के संग कोई ऐसा विशेष सम्बन्ध नहीं है अतएव क्रोध भी उन पर नहीं है; शिव ने जामाता होकर ससुर की मर्य्यादा नहीं रक्खी—विशेषतः त्रिलोक के सामने—इसी से जामातृ के ऊपर विशेष क्रोध हुआ है; जा-

सतेही तो हो कि महाराज स्वभावतः कैसे क्रोधी हैं अकारण कितने खंड का प्रलय होगया, फिर इस समय तो एक कारण भी है। किन्तु जैसा क्षुद्र कारण है वैसा क्षुद्र क्रोध नहीं है—और २ समय तो अल्प ही काल में जाता था इस बार तो जाताही नहीं, और बेर तो फस की अग्नि थी और इस बार सर्व्व दाहक दावानल है—ऐसा बोधशून्य क्रोध और कभी देखने में नहीं आया था।

शैव०—बोधशून्य ही है—शैव दल से द्वेष रखना!

सभा०—यदि इतनाही होता तो भी कुशल था!

सब लोग०—फिर और क्या?

सभा०—और तो भाई बड़ा भयानक व्यापार है—एक यज्ञ का अनुष्ठान हुआ है उसमें त्रिभुवन के देव मात्र को निमंत्रण है, केवल शिव को नहीं!

शैव०—(कान में अँगुली डाल कर) क्या सर्व्वनाश! शिव! शिव! शिव!

नग०—ऐं! आपने क्या कहा? अरे यह अनर्थ?

सभा०—यह अनर्थ क्या, राजा ने कहा है कि अपमान का बदला लेंगे—शंभु को त्रिलोक से न्यारे करेंगे!

नग०—तो क्या आप लोगों ने भी मना नहीं किया?

सभा०—मना! महर्षिगण, मंत्रीवर्ग, बंधु बांधव, हम

लोगों ने कितना २ निषेध किया, कितना २ समझाया, कितने प्रकार की युक्ति की, यहां लों कि हमलोगों ने चरण पर सिर रखकर रोदन भी किया तो भी इनकी—दृढ़ प्रतिज्ञा—और सुत्रपात स्वरूप ग्रैवर्निर्व्वासन की यह निठुर आज्ञा बनी ही रही!

( नेपथ्यमेंगीत )

करो भय भव माया की जाल।
जापर कृपा करै प्रभु आपुहि सो उबरै यहि काल ॥१॥
यद्यपि मीन रहै अगाधि जल तातें कछु डर नाहि।
तदपि काल पाय थोड़े जल रहि तुरंत फँसि जाहि ॥२॥
भोग सरित में लोभ को चारा जाको मन ललचाहिं।
ताको कछु बिलंब नहिं लागत बंसी में बिंधि जांहि ॥

नग०—हां! वही शान्तिराम पागल आता है!

सभा०—शांति पागल कौन है?

नगर०—देवर्षि नारद के ढेकी का रक्षक इसको कहा जा सकता है, और एक प्रकार का उनका शिष्य हुई है! ( सहास्य ) देवर्षि की सब कथा बिलक्षण ही देख पड़ती है—वाहन भी है तो एक ढेकी शिष्य भी आप का एक पागल है—और मुख्य कार्य्य—दो मनुष्यों में परस्पर झगड़ा लगा देना।

सभा०—( दांत से जीभ दबा कर ) नहीं, नहीं, ऐसी

बात मत कहो, तुम उनको नहीं जानते। वे कर्म्म काण्ड से अतीत हैं, स्वतःसिद्ध परम योगी हैं। और यह मनुष्य भी जब उनके संग रहता है तो वाह्यचिह्न होनेसे क्या होता है अतःकर्ण में इसके भी तत्व हुई है। और जो गीत इसने गाया है वह भी निरो पागलपने की नहीं! बात तो उसकी सादी है परंतु भाव सादा नहीं है, भला अब तो आही रहा है, परोक्षा ही ले ली जावे!

( गांजा मलता, नाचता गाता हुआ शान्ति पागल का प्रवेश )

सब लोग०—महात्मन्—नमस्कार।

शान्ति०—नमस्कार करु वाको, जो अविकार।
जो निरूप निरुपाधी, हृदय मॅझार॥

सभा०—शान्ति राम! तुमारे हाथ में क्या है?

शा०—यही रंजिका गंजिका सुर नर मुनि बस कीन।
सो मम हाथन आयके स्वर्ग सुलभ करि दीन॥

सभा०—तुमारे गुरु महाराज इस समय कहां है?

शा०—घर भाव मैं अब फिर आये।
यहि चय दक्षपुरी सुख पाये॥

नग०—( किनारे जाकर ) इसे पूछना चाहिये कि देवर्षि और इस्का सग कैसे हुआ—यह पूछने योग्य है!

सभा०—शान्ति राम! देवर्षि तुमको कैसे मिले? कैसे संग हुआ?

शा०—एक दिवस एक तरु तरे गांजा ले निज हाथ।
मलत रह्यौं देख्यौं तबै चले जात हैं नाथ॥
निष्टर कहि खड़ाकरायउ, बड़भाग्य से दर्शनपायउ,

( गीत )

हूं हूं हूं ताना ना ना और तो डरता नहीं, अंधेरे में पांव धरता नहीं।

नग०—( सभापाल से ) सुनो भाई बीच २ में यह भूल जावेगा—स्मरण करना पड़ेगा।

सभा०—हां शान्तिराम। तुमने उनको खड़ा होने को कहा तो फिर?

शा०—कृपासिन्धु मम आश्रय पाये।
करिकै दया निकट चलि आये॥
तब मैं कह्यौं सपथ प्रभु खाओ।
कहां जात हौ सत्य बताओ॥
कह्यो जात गोलोक हौं जो बिचित्र अति धाम।
करि दरशन आनद लहब तहवां राधा श्याम॥
कह्यौं भली प्रभु बात सुनाई।
पुछिहहु मम सँदेस चित लाई॥

साधन पूजन भजन बिनाहीं ।

हम गांजा पीवें के नाहीं ॥

( गीत )

सा री गा मा पा धा नी सा और तो भय करते नहीं, जम का भी कुछ धरते नहीं ॥

सभा०—महात्मन, भला तदनन्तर क्या हुआ ?

शान्ति०—मुनि अवाक ह्वै अस प्रभु कीन्हों ।

मानि बचन तुरतैं चलि दीन्हों ॥

जात २ एक बेमउट पांहीं ।

ठोकर लग्यो गिरे भुइ माहीं ॥

दौड़ि निकट मैं गयो ताहि छण ।

देखि पर्‍यो कंदरा बिलच्छण ॥

योगी एक निकसि तब आवा ।

नारद सन कछु बचन सुनावा ॥

मुलुल २ कोटर दोउ नयना ।

खोलि कह्यो मुनि सों यह बयना ॥

भंग्यो ध्यान कौन तुम ? पारद ( १ ) ।

ऋषि ने कह्यो अहौं मैं नारद ॥

पथ गोलोक भुलिगो मोही ।

भयो कलेश बाढ़ि ते तोहीं ॥

( १ ) उद्धारक ।

योगी कह्यो भाग्य भल आज् ।
तव उपकार होइ मम काज् ॥
एक बात हरि सों कहि देहो ।
उत्तर देहि सोज सुनी लेहो ॥
तप जप ध्यान कीन्ह चरनन को ।
बरष सहस दस दुख सहि बन को ॥
दीमक खाये मम तन छालहिं ।
अब जप करि मरवै कत कालहि ॥
एवमस्तु कहि प्रभू सिधाए ।
शान्तिराम निज आसन आए ॥

(तुरही बजाता और नाचता गाता है)

तिड़िक तिड़िक तिड़िक, अब का क्या है हिड़िक ।

सभा०—क्यों तुम फिर गाने लगे? तदनन्तर नारद गुसाईं ने योगी से और तुम से क्या कहा?

शा०—मुनिवर जब गोलोक से आये ।
योगी कँह संवाद सुनाये ।
मैं नहि रह्यो तहां तेहि काला ।
नारद सों पायो सब हाला ।

सभा०—तो कहते क्यों नहीं? योगी से उन्होंने क्या कहा?

शा०—योगी सन नारद यह बोले ।
"सब हृतांत हरि सो हम खोले" ।

चिन्तामणि कछु चिन्ता कीन्हीं ।
"नहिं जानत हौं" उत्तर दीन्हीं ॥
सुनि योगी बोले रिसिआई ।
मिथ्या बात न कहत सकाई ॥
गए कहाँ कैसे तुम मुनिवर ?।
हरि क्या करत रहे तेहि औसर ? ॥
नारद बोले सुनु योगीश्वर ।
"बाम लछमी दहिने ईश्वर ॥

खेल एक देख्यो तहां अदभुत भयो अनेक ।
हरि सुई लैं बाम कर दहिने हाथी एक ॥
सुई बेध में सुंड को सत की नाईं डारि ।
हाथी डारि निकासते बारम्बार मुरारि ॥

( नृत और गीत )

और तो भय करते नहीं, मरने को थे सो मरते नहीं ।

सभा०—हां भाई ! यह बात सुन कर फिर योगी ने क्या कहा ?

शान्ति० –सुनि योगी बोले मुसुकाई ।
सुई बेध में हाथी जाई ? ॥
ऐसी बात कहत न लजाये ।
मनहु नाशा में घोर समाये ॥

जान्यौं मिथ्या बात तुमारी ।

नहीं गए तुम निकट खरारी ॥

( गीत । )

माधौ अब कछु कौन उपाय ।

भूपर नाहर क्रोध भरो है जल में ग्राह देखाय ॥ १ ॥

भजन भाव तरुशाखा पर एक बंचक योगी सांप ।

केहि गहि रहौं कहां अब जाऔं बड़ो बिषम यह पाप ॥

श्रुति पुरान बहुचेत किए हम यत्न किए बहु बार ।

बिनु तव कृपा नाथ मम कबहूं संशय टरत न टार ॥

सभा०—हां महात्मा ! उसके पीछे देवर्षि ने तुमारे पास आकर क्या कहा ?

शा०—हँसि बोले मुनि "खुसी मनाओ ।

शान्तराम तुम बगलब जाओ ॥

हरि बोले हम सन हरखाई ।

गोलोकहु वह गांजा पाई ॥

नाचि उठ्यौं अतिशय सुख पाई ।

तुर्त गयौं चरनन लपटाई ॥

मिटिगो तिमिर ज्ञान की बाधा ।

रहै सो कस प्रभु कृपा अगाधा ॥

ताल ठोंकि बोल्यौं तेहि अवसर ।

द्विरद्‌य जब अइहैं जगदीश्वर ।
तब पूछब बचा सन ऐसे ।
गांजा बिनु भजबे तोहिं कैसे ? ॥
हंसिबोले मुनिवर तबै सुनो आश्चि एक बात ।
सुई वेध में देखि के हाथी आवत जात ॥
भये अवाक तहाँ फिर हमहूं ।
ऐसो खेल न देख्यौं कबहूं ॥
जामे सूत न सहजै जाई ।
तामें हस्ती गयो समाई ।
यह सुनि मुनि मन कह्यौं बुझाई ।
या में अचरज काह देखाई ॥
जगत काण्ड ब्रह्माड को विना सुत्र आधार ।
जो निसुदिवस चलावते अपनी मति अनुमार ॥
तेहि समीप कस कठिन यह साखी चारो वेद ।
हाथी डारिनिकार ते पुनि २ सुईछेद ॥
मुनि यह कथा सुनत हरषाई ।
तुर्त गोद में मोहि बिठाई ॥
करनमूल हरिमंत्र बतायो ।
करि आदर मोहि शिष्य बनायो ॥

( नाचता है )

सा रे गा मा पा धा नि सा, तिड़िक तिड़िक ति-

छिक मिटिगो जम को छिछिक रे भाई मिटिगो जम को छिछिक, (प्रस्थान)

नग०—क्या आश्चर्य है! यह तो एक प्रकार का पागल है!

सभा०—यह तो नहीं, हम्हीं लोग पागल हैं। वह सार वस्तु में व्यस्त है हम लोग असार में व्यस्त हैं यही भेद है और क्या? यदि ऐसा न होता तो देवर्षि शिष्य कैसे करते?

नग०—क्यों भई, देवर्षि को महाराज एकांत में लेजाकर क्या मंत्रणा करते हैं?

सभा०—और मंत्रणा क्या होगी—यही होगी कि यज्ञ विना शिव के हो। और शिव को छोड़ कर त्रिभुवन के निमंत्रण का भार देवर्षि पर देंगे!

शै० यह कैसा सर्व्वनाश हुआ! काल का न जाने क्या धर्म्म है। राजा की ऐसी विपरीत बुद्धि! मुझे स्वप्न में भी ऐसी आशा न थी। जो सुनैगा कान पर हाथ धरेगा! शिव शिव शिव—

वै०—नगरपाल महाशय! राजाज्ञापालन में अब क्या विलंब है? आपके सम्मुख ही यह मनुष्य क्या बक२ करता है, नहीं सुनते; इसी से प्रारंभ क्यों नहीं क-

रते? यदि आप के साथ कोई नहीं है तो मुझी को आज्ञा दीजिये, मैंही गर्दनिया और धक्का देकर इसको दूर करदूं!

सभा०—तुमतो भाई बड़े दुराचारी जान पड़ते हो।

नगर०—यदि अनुमति हो तो नवीन आज्ञा की प्रतीक्षा की जावे? हम को तो कुछ सूझताही नहीं कि क्या करें! यदि कर्तव्य कर्म कष्टदायक भी हो, तौभी करना ही पड़ेगा।

सभा०—हाँ सो तो ठीक है। करनाही पड़ेगा। परंतु इस आज्ञा का पालन शिष्टाचार द्वारा होना चाहिये! और राज ने जो सबको तीन दिन की अवधि प्रदान की है, उसको भूलना नही चाहिये!

नग०—जी भला उसमें कभी भूल हो सकती है।

( सबका प्रस्थान )

( पटाक्षेप )

## ( दूसरागर्भाङ्क )

स्थान—दक्षपुरी—मंत्रणागृह।

( दक्ष और नारद उपस्थित हैं )

दक्ष०—अरे भाई तुमने जो कहा, वह सबतो मैं जानता

हूं; परंतु जो गुरु लघु को नहीं मानता उसका फिर धर्मही क्या? वह देवता कैसा? उसको तो असुर कहना चाहिये। उससे सम्बन्ध क्या? उसपर दया करने का प्रयोजन क्या है?

ना०—यह तो सत्यही है, क्योंकि आप उनके ससुर ठहरे पिता तुल्य हैं, जिसकी कन्या विवाहा—यह कितनी बड़ी भारी बात है। जिस को इतना बोध नहीं उसको समाज में रखने से समाज का अपमान है। मैं जो इतना निषेध करता था उस को आपने क्या समझा; भद्रपुरुष मात्र विवाद मिटाने की इच्छा एक बार करते हैं। परंतु आप की बात सुनकर अब मेरा वह मन नहीं है। "शुभस्य शीघ्रं"। ऐसे मनुष्य को समाज से निकाल ही देना उचित है। (स्वगत) क्या दर्प है। (प्रकाश्य) और इस बात में कौन ऐसा है कि सम्मत नहीं होगा? (स्वगत) यमराज की सम्मति तो अवश्य होगी।

दक्ष०—भाई, यही तो; अब ठीक राह पर आये। विचार तो करो कि शरीर धारण करके इतना अपमान—कौन सह सकता है?

नार०—असह्य है, अत्यंत असह्य है, कामादि षट्‌रिपु मय देह धारण करने से मान अपमान का ज्ञान सहज

ही होता है, ! आप तो फिर प्रजापति – लोकनाथ हैं ! आप का तो लौकिक पद मर्य्यादा और सन्मान रखना ही चाहिये। ( स्वगत ) पदरक्षा में चतुष्पद न हो जाओ !

दक्ष०—यदि ऐसा न होता तो भाई भला हम शिवहीन यज्ञ कभी करते ? यद्यपि रानी हम को स्नेहममताशून्य, निर्दय कह कर तिरस्कार करती हैं; और अन्न जल त्याग करके केवल "हा सती ! हा सती!" शब्दोच्चारण पूर्वक रोदन करती है; परंतु हमारी तो भाई दृढ़ प्रतिज्ञा है। तुच्छ कन्यावात्सल्य, स्त्रैणसैन्य, और स्त्रीवाध्य होकर क्या हम अपने पुरुषार्थ को त्याग कर देंगे ? भला ऐसा भी कभी हम कर सकते हैं ? कभी नहीं ! कभी नहीं। ऐसा तो कभी नहीं होने का। !!

ना०—भला ऐसा कभी हो सकता है ? अपना मान आप ही रखना उचित है। राज्यपद पाकर यदि अपने पदरक्षा का यत्न न करे तो उसे भारी विपत्ति भोगनी पड़ती है ? शत्रु का दमन होना तो दूर रहे उस राजा की प्रजा भी भय, वा भक्ति नहीं करती। क्षमा से क्या योग्यता रहती है ? ( स्वगत ) क्षमा

में उन्मत्तता ! अब अधिक दिन नहीं है, काम पड़ गया है, यही हो और क्या—

दक्ष॰—और क्या कहा भाई, मैंने नहीं सुना ?

ना॰—कुछ नहीं यही कहते हैं--कि तपस्वी की भांति, क्षत्रधारी को क्षमा का गुण शोभा नहीं देता—आप क्षत्री न भी हों परंतु जब क्षत्री धर्म्म का भार उठाया है तो तेज प्रताप के भिन्न क्षमा आप को उचित नहीं है।

दक्ष॰—तो भाई जाओ; उस भंडयोगी भूतड़ों के मेली के सम्पर्कियों को छोड़ कर त्रिलोक मे और सब को निमंत्रण दे दो।

ना॰—तो उसके सम्पर्की तो सब के घर हैं वैदिक धर्मा-वलंबी जितने हैं बिना शिव की पूजा किये जल तक भी ग्रहण नहीं करते; इसका उपाय क्या है ? (दक्ष को बिमर्ष और चिंतित देख कर स्वगत) इसी समय तो दादा की चौकड़ी भूली है ! मैंने अच्छा नहीं किया कि इस समय यह बात सुना दी। यदि निज संकल्प त्याग दें तो सब वृथा हुआ—दर्प-हारी भगवान द्वारा हम दर्पहरण कार्य्य पर नियुक्त हैं, वह कार्य्य किस प्रकार सिद्ध होगा ? नचाया तो अच्छी ही भांति से नचावैं ( प्रगट ) क्यों भद्र !

यदि यह बात की जावै तो कैसी होगी ? कि इस समय शैव, वैष्णव, शाक्त, भाक्त, किसी के विचार करने का कुछ काम नहीं है, कैलास छोड़कर सब स्थानों पर निमंत्रण दिया जावै, जब सब लोग सभा में उपस्थित हों तब कह दिया जावै कि अब से कोई व्यक्ति तमोगुणान्वित शिव की पूजा न करे। यदि कोई विचलित होगातो उसके शान्ति का उपाय किये जावेगा ! क्यों ? यह तो अच्छा होगा न ?

दच०—भाई ! ऐसी मंत्रणा ( १ ) में तो बृहस्पति भी आप के शिष्य होने में अपने को धन्य समझेंगे ! यही बात करने योग्य है ! उसी सभा में समस्त त्रि भुवनवासी के समक्ष हम ऐसे २ अद्भुत तपःप्रभाव और ब्रह्मतेज दिखलावेंगे कि हमारे यज्ञाहुति से शिव सदृश लाखों वीर पुरुष को उत्पन्न देख कर सब को आश्चर्य होजावेगा और सब के सब हमारे मतावलंबी हो जावेंगे।

नार०—तो शैव प्रजा को जो नगर बाहर करने की आज्ञा थी उसे उस दिवस तक तो स्थगित रखिये !

दच०—यह भी करने योग्य है ! अभी हम उन लोगों के नगर बाहर करने का प्रसंग छोड़ देते हैं ! ( निकट में कंकण का शब्द ) सुनो तो भाई—लो फिर वही

( १ ) सलाह ।

कंकण की झनकार सुन पड़ती है। मेरे कान में तो धनुषटंकार बोध होता है। रानी फिर हमको उद्विग्न करने आती हैं—जान पड़ता है कि कलह का समर बांधे चली आती हैं! हम को तो भाई स्त्रियों के वाक्यबाण और उनके रोदन रूपी सखनाद से जितना भय होता है, त्रिलोक के सैन्य समावेश और महार वीर के सिंहनाद का भी उतना भय हम नहीं करते। तुम भाई हमारी रक्षा करो! जो हो कछ सुन कर इनको शांत करते जाओ हम तो थक गये!

( प्रसूती और सनका का प्रवेश )

प्रसू०—कैसे थक गए महाराज?

दक्ष०—कैसे ही थके इस समय यह तुमारे खुले हुये केश और मलिन वेष देख कर—

प्रसू०—क्या इसका कारण तुम नहीं जानते?

दक्ष०—जानते तो हैं, परन्तु अलंकार (१) का त्याग करना कुलक्षण, अति कुलक्षण अत्यन्त कुलक्षण है!

प्रसू०—हमारा फिर लक्षण ही क्या? जिन लोगों के हेतु लक्षण है उनमें से जो सार रत्न हैं जब उसी से मैं बंचित होती हूं, तो क्या तुमारे हमारे निमित्त लक्षण मानना पड़ेगा?

(१) गहना।

दक्ष०—तो क्या तुमारे उस कन्यारत्न के कारण हम अपने मान्यरत्न को त्याग देवें ?

( नारद की ओर देखते हैं )

प्रसू०—वह रत्न क्या केवल हमारा ही है तुमारा नहीं तुम जब गर्भ धारण करते तब जानते कि माता होने में क्या कष्ट होता है ?

दक्ष०—तुम भी यदि पिता होतीं तो जानतीं कि ससुर को अपमानित होने से क्या दुःख होता है ?

( नारद के मुह की ओर दृष्टि )

नार०—( स्वगत ) नारद। नारद। नारद ! ( प्रगट ) क्यों नहीं।

प्रसू०—महाराज। ऐसा मत कहिये ! शिव ने तुम्हारा क्या अपमान किया ? उठ कर खड़ा नहीं हुआ; यही न; कि और कुछ ? अरे जामाता और पुत्र क्या भिन्न हैं ? तो यही समझ कर क्यों नहीं भूल जाते ? सो भी हमारा बच्चा भोलनाथ भांग धतूरा खाने का अभ्यास रखता है; सर्वदा नशे में आंख बंद करके बैठा रहता है, इसी कारण न उठ सका होगा। बस इसी से तुम्हारा इतना अपमान हो गया ?

दक्ष०—अहा हा ! तुमारा बच्चा क्या चार दिन का बालक है ! कुछ नहीं जानता। सांसारिक पदार्थों के दे-

खने के समय तो दस नेत्र बाहर होते हैं, स्वर्ग, मर्त्य, रसातल में भ्रमण करती बार और भूतों के संग नाचने फिरने के समय तो दिव्य चरण हो जाते हैं, तब तो भांग धतूरे का नशा कुछ भी नहीं रहता, केवल सभा में गुरुजन के सन्मानार्थ एक बार उठने ही में नशा नहीं छूटा पांव नहीं उठा! क्या आश्चर्य्य है। ऐसे व्यक्ति के निमित्त इतना अनुरोध और ऐसा स्नेह! इसी से तो कहते हैं कि "स्त्रीबुद्धिःप्रलयंकरी"

(नारद के प्रति दृष्टि)

प्रसू॰—तुम बड़े निठुर, अत्यन्त निर्दय हो! तुमारा हृदय सर्वदा ही से बज्र है, इसी कारण सती पर तुमारे हृदय में कुछ भी दया नहीं आती। बहुत से मनुष्यों की पुत्री है तुमारे भी अनेक हैं, कहो तो कि रूप गुण में त्रिभुवन मध्य ऐसी सुवर्ण की ढली पुतली आंख से कभी देखा है? कैसाही बड़ा प्रभु, रागी और क्रोधी हो पर जिसके मुखारविन्द के देखतेही उस का सब क्रोध और सब प्रभुता भूल जावे, भला तुम उस के पिता हो कर कैसे उस पर क्रोध करते हो? मैं इसी के समझने मेंपागल हो गई हूं। जिस जामाता को तुम अभागनयासी बेटा कहते थे, हमारी बेटी ने उसको भी बश में किया, उसी के चरण पर

मन प्राण अर्पण कर दिया है; उस को गृहस्थ बना कर सुख पूर्वक गृह कार्य्य निर्वाह करती है, सुना है कि सती की पतिभक्ति और कैलास की गृहस्थी को देख कर त्रिभुवन में धन्य २ होरहा है। हाय! ऐसी पुत्री पाकर भी महाराज क्या जन्म सफल बोध नहीं होता? ऐसी पुत्री पर तुम्हारे मन में क्या तिल भर भी दया, माया, नहीं आती? माया तो दूर रहै उसी पुत्री को परित्याग करते हैं! अब मैं कहां जाऊं? छि: छि: छि: अब क्षण भर भी प्राण रखने की इच्छा नहीं है गले में फांसी लगा कर मरने ही की इच्छा होती है।

दक्ष०—ओ—क्यों देह जलाती हो? किसने तुमारी पुत्री को त्याग देने कहा है? जो त्याग करने योग्य है मैं उसी को त्याग करता हूं!

प्रसू०—हाय महाराज! क्या तुमने मुझ को निरी अज्ञा-नही समझ लिया! पुत्री तो नहीं त्याग करते जामाता को त्याग करोगे! पुत्री जामाता क्या भिन्न हैं? तुमारा यदि कोई अपमान करेगा तो क्या मैं उस के घर जा सकती हूं? वह क्या ऐसी वैसी पुत्री है; अपना प्राण दे सकती है परन्तु पति का अपमान नहीं सह सकती!

दश०—भला—कलह की लड़की और आज उसको इतना ज्ञान हो गया!

सनका०—(पृथक हो कर) मा अब क्यों वृथा बात बढ़ाती हो? तुम क्या महाराज को नहीं पहचानतीं? वे जान बूझ कर अनजान और सुन कर बहिरे बने हैं, किसी बात पर ध्यान नहीं देंगे। चलो अब चलें!

प्रसू०—(सरोदन) हे ईश्वर! अब हम कहां जावें? किस के पास जावें? इस अभागिनी स्त्री जाति की और क्या गति है? रोने का स्थान है तो यही है; साध पूर्ण करने का, कहने का, खड़े होने का, जो स्थान कहो सो तो यही है। स्वामी से बड़ा कोई नहीं, यदि वही मन का दुःख नहीं बूझता; वही हृदय के ताप को शीतल नहीं करता; वही कलेजे में घाव करता है; तो अब किससे कहै? हा सती! तू कहां है? हा दुःखिनी की धन; अंधो की आंख, प्रसूती की जीवनाधार, एक बार आ। तुझ को गोद में लेकर तेरा मुखचन्द्र देखूं और अपने बहुत दिवसों के तप्त हृदय को शीतल करूं। तेरे मुख चन्द्र देखने के निमित्त जैसा हृदय व्याकुल हो रहा है, इस को गुरुदेव ही जानते हैं! हाय हमारी पुत्री कब की गई है, भला सास ननद भी तो नहीं है कि उस

के दुःख की साथी होतीं! यदि जयाविजया न होतीं तो न जाने मेरी पुत्री को कितना कष्ट होता! परंतु सहस्रों ऐसी २ हों तो क्या? और सहस्रों मेरी कन्या की सहायता भी करें, तो भी भला मेरे प्राण को इससे सन्तोष हो सकता है? हाय, मैंने जब २ अपनी पुत्री को बुलाया तो पागल जामाता ने आने नहीं दिया, तब मैंने यह सोचा था कि इस यज्ञोत्सव में अवश्य आने देगा परन्तु विधाता ने मेरी यह भी आशा पूर्ण नहीं की! किन्तु इस में विधि का क्या दोष है? यह हमारे कर्म्म का दोष है! निस्सन्देह मैं अभागिनी हूं; इसी से रानी भी हुई तो निर्दय पति के हाथ में पड़ी, मनुष्य जन्म का कुछ भी फल न मिला, मेरा कोई साध, कोई आह्लाद पूर्ण नहीं हुआ। हाय! हाय! जिस को अपने संतान पर दया नहीं है, जो मनुष्य केवल "मान मान" कह कर गर्व में मत्त है, हा! विधाता ऐसे मनुष्य को ऐसी संतानिधि क्यों दिया? जो पुरुष अपनी स्त्री, अपनी कन्या का दुःख नहीं बूझता मुंह देखना नहीं चाहता, वह प्रजापति है? जो निज जनों को प्रसन्न करना नहीं जानता, वह यज्ञ करके त्रिभुवन को कैसे सन्तुष्ट कर सकता है? जिस के घर ही में

मिवलस है, फिर उसका उत्सव और यज्ञ क्या ? उस को तो यही उचित है कि सब लोगों को घर से निकाल कर अपने ही सदृश मनुष्यों को ले कर यज्ञ करे ! हाय रे ! जिस पुत्री के निमित्त सब कुछ है यदि वही नहीं तो संसार ही रहे तो क्या, उस का राज्य क्या, और किस का क्या ? मेरे समझ में तो कुछ नहीं आता ! महाराज ! मैं कातर हो तुमारा चरण धर कर कहती हूं कि तुम मेरी सती को बुला दो ! नहीं तो मैं तुमारा यज्ञ भ्रष्ट करूंगी ! घर छोड़ कर बनबासिनी बनजाऊगी । आत्महत्या करके मर जाऊगी !

दक्ष०—(नारद के प्रति) भाई नारद ! मैं यह सब रोना गाना नहीं सह सकता, मैं जाता हूं, (इंगित करके) तुम से जो हो समझा बुझा कर आओ ! [प्रस्थान ।

प्रसू०—देवर्षि ! मैं आप ही का आना सुन कर आई हूं, मैंने कुछ नहीं समझा, कि यह क्या बात है, क्यों तुम तो कुछ कहते ही नहीं ?

नार०—माता—मैंने भली भांति सविस्तर कहा था ! बात अच्छी नहीं है ! वह तो सुनेंगे नहीं, आप क्या कहने को कहती हैं ? जैसा हठ किया है वैसा ही करेंगे ।

प्रसू॰—तो हम सती के मिलने का क्या यत्न करें ? तुम्हीं कहो । क्या उपाय है ?

नार॰—यही तो विषम संकट है । कैलास में जानाही तो निषेध किया है ।

प्रसू॰—यह तो नहीं होगा, कैलास में तुम को जानाही होगा । और हमारी सती को ले आनाही पड़ेगा ! हमारी शपथ करो । यह काम तुमको करना ही पड़ेगा ।

नार॰—ओः राम राम कहो, शपथ करने में क्या है ? आपकी आज्ञाही सब प्रकार से मान्य है । परंतु जब वे क्रोध करेंगे तब क्या होगा ?

प्रसू॰—क्रोध कैसा ? क्रोध करेंगे तो अपना क्रोध और अपना यज्ञ लिये बैठे रहेंगे ।

समझा॰—माता ! समझ बूझ कर कहो, जिसमें कोई बीपत्ति न हो ।

प्रसू॰—बिपत्ति तो हुई है ! हमारे लोक परलोक दोनों के नष्ट होने की सम्भावना है ! (नारद के प्रति) हमारे भाग्य में जो लिखा है सो तो होहीगा, परतु तुम्हें सती को लानाही पड़ेगा । उनके क्रोध का कुछ भी भय मत करो ।

नार॰—नहीं माता ! जब आप की आज्ञा होती है, तो दूसरी बात नहीं होगी। गुप्तभाव से जाकर सबाद कहके चले आवेंगे।

प्रसू॰—नारद! तुम देवर, निज संतान तुल्य हो, हमको इस बिपत्ति से उद्धार करो! मैं हृदय से आशीर्बाद देती हूं कि मेरे सिर पर जितने बाल है उतनी तुमारी परमायु हो।

नार॰—( सहास्य ) आयु तो योंही अधिक है, उस की आवश्यकता और क्या है,! यह आशीर्बाद दो कि धर्म्म मे बुद्धि बनी रहै।

प्रसू॰—तुमको सुमति हो। तुमारे पुन्य का कर्म सौ गुना हो, हम को सती धन की भिक्षा दो। अब अधिक क्या कहै।

नार॰—तो निश्चिन्त बैठो; और रोदन मत करो! आपकी पुत्री सती आवैगी। अवश्य आवैगी! अब प्रणाम करता हूं! [प्रस्थान।

( पटाक्षेप )

## दूसरा अंक।

### प्रथम गर्भाङ्क।

( कैलासपर्वत--बिल्वकुंज )

( शिव ध्यान में निमज्ज हैं--नन्दी हाथ में त्रिशूल लेकर दूर खड़ा है। )

( पर्वत पर नारद और शान्तिराम का प्रवेश )

नार०--शान्तिराम। देखो यही कैलास पर्वत है; ! ऐसा रमणीय स्थान और कहीं नहीं पाओगे। यह स्थान शांतिरसास्पद है ! इस स्थान पर आने से भय, भक्ति, प्रेम, बिस्मय, उल्लास इन पांच भावों का उदय होता है !

शांति०--भय कैसे तुम कहत गोसाईं।
बाघ सांड खेलत जेहि ठांईं॥

नार०--उनसे तो संपूर्ण निर्भय रहो। बरन यह तो बिस्मय और प्रेम का बिषय है। महादेव का ऐसा ही प्रभाव है। और नन्दी का ऐसा ही शासन है जिससे सिंह औ मृग, मूषक औ बिलार, सर्प औ नेउर, गाय और बाघ, भैंस इत्यादि स्वच्छंद एकत्र खेला करते हैं; इससे अधिक आश्चर्य और क्या होगा ? और खाद्य खादक में ऐसा सख्य भाव है तो इससे अधिक प्रेमभाव क्या

होगा ? परंतु भय का कारण दूसरा है ! जो कुछ देर मे देखोगे—भैरव भैरवी, पिशाच पिशाची, ताल बैताल, काल बेकाल, भूत, प्रेत, डांकिनी, साकिनी, प्रेतिनी, आकार, प्रकार, श्मशानक्रीड़ा हास्य कौतुकादि देख कर वज्रधारी इन्द्र को भी भय होता है, दूसरे की क्या कहै !

शांति०—पांच भाव में बरन्यो तीन ।

दुइ की कछु चरचा नहिं कीन ॥

नारद०—यह देखो, शांतिराम ! योगी जनों के सेव्य, स्वयम् योगीश्वर, योगासन पर बैठ कर आत्मानुसंधान रूप, महायोग साधन करते है; नन्दिकेश्वर हाथ में त्रिशूल लिए बिल्वकुंज के द्वार पर खड़े हैं कि कदापि भूतगण जो दूर स्थित हैं पीछे से अशिष्टाचार द्वारा, संयतात्मा भूतनाथ के इस ध्यानावस्था में कोई विघ्न न करें; नन्दी किंचित कोप सहित नाक पर एक अंगुली दे कर संकेत से उन लोगों को निवारण करते हैं; नन्दी के इसभाव को देखकर एक शाखा या पल्लव भी नहीं डोलता; विशाल काननमय कैलास पर्वत यद्यपि अनगिनित जीव जंतुओं से भरा है तो भी ऐसा शब्दशून्य रहता है कि जिससे ठीक एक प्रकार के चित्रपट का भ्रम हो सकता

है। विश्वनाथ विश्ववेदिका पर व्याघ्रचर्म बिछा कर वीरासन से बैठे हैं—नाभि का ऊर्द्ध देश निश्चल है मानों द्वितीय कैलास पर्वत रजतगिरि के भांति सरल भाव से बैठा है; केवल कंधा कुछ झुका हुआ युगल करतल अंग के ऊर्द्ध भाग पर पड़े हैं; जिससे यह बोध होता है कि नाभिसरोवर में कमल पर कमल प्रफुल्लित है। लंबी जटाजाल सर्पों के बंधन से बँधी हुई है; रुद्राक्ष माला द्विगुण भाव से कान में लटकी हुई है, उससे कैसी अलौकिक शोभा हो रही है, भ्रुकुटी भी नहीं हिलती—बरुणी की पंक्ति भी नहीं डोलती—मानों अपने नासिका का अग्रभाग देख रहे है, परंतु कुछ देखते नहीं प्राणादि वायु को रोक कर स्थिरचित्त हो रहे हैं, जैसे ठीक मेघ बिना वर्षा और समुद्र बिना तरंग के हो, अथवा दीपशिखा बिन वायु के स्थिर हो! क्या इस देखने से भी तुमारे हृदय में भक्ति का उदय नहीं होता? दक्षप्रजापति यदि इस समय आकर यह भाव देख पाते तो वे भी भक्तिरस में डूब जाते और उनको शिवहीन यज्ञ करने की इच्छा कदापि न होती।

शांति०—रहो तो प्रभो! गिन करके देखें कि कितने भावों को देखा और कितने शेष हैं?

भय बरन्यो तुम भूत सों भली भयंकर मांहि ।
खादक खाद्य मिलाप सों बिस्मय प्रेम लखांहि ॥

( अंगुली पर गिनता है ) ( स्वगत ) एक, दुई, तीन, चार, और एक क्या हुआ ? भला भाई पूछने का अच्छा अवसर मिला है, नहीं तो जो जी में आता है अट्ट का सट्ट कहे जाते है। ( प्रगट )

चार भाव जान्यों प्रभु सदा रहत कैलास
करिके कृपा बताइये कैसे है उल्लास ?

नारद० – उल्लास का कारण—शोभा, सौन्दर्य्य और माधुर्य्य, है। इस पर्बत की भांति मनोहर स्थान, कल्पना करने से स्वप्न में भी नहीं देखा गया। यहां चिरकाल बसत बिराजमान है! सघन बन के मध्य २ यक्ष, रक्ष, सिद्ध, चारणगण का रम्य उपबन है! देवकन्या, और गंधर्वीगण के बिहार का सरोवर है फिरभगवती का लीलाकुंज भी कैसा चमत्कारिक है। उत्तर भाग में यक्षराज पुरी बिराजमान है, जिसकी शोभा का वारापार नहीं! उस पर किन्नर नगर अति मनोहर है, और सूर्य्य लोक के स्पर्श करने वाले अनेक शिखर है, प्रत्येक शिखर पर नव २ सौन्दर्य्य के आधार हैं— स्वेत, पीत, नील, लोहित वर्ण और अनेक प्रकार के बिबिध धातुओं से भूषित हैं। सबके ऊपर श्यामतरु

गुल्मलता, नेत्रों को शीतल करती हैं, इस पर्वत पर ऐसी २ अनेक औषधियां हैं कि जिनसे चतुर्दिगस्थ बन में सर्व रात्रिकाल दिन की भांति दिखाई पड़ता है ! ऐसी २ सब वनस्पतियां हैं कि मर्त्तलोक के बड़े २ वृक्ष समूल उनके एक २ शाखा के स्तम्भ तुल्य हैं, ऐसे २ शैलज (१) लता पत्र हैं कि जिन की सुगन्धि स्वर्ग पर्य्यन्त फैल रही है—इन्द्राणी कभी २ पारिजात को भी अनादर करके उन्हीं फूलों के सुगन्धसेवन से सुखी होती है ! और वह जो दूर विपुल वृक्ष देखते हो जिसके नीचे विचित्र मणिवेदी है, उसका नाम "कल्प वृक्ष" है, यही अद्भुत वृक्ष बारहो मास फल फूल दिया करता है, जिसकी सुगंधि दूरव्यापी और स्वाद अमृतमय है, और सुनो वह जलविहारिणी अप्सरायें कैसे सुन्दर मधुर स्वर से गा रही हैं, ! क्या इतने पर भी उल्लास का अभाव है ?

शांति०—( नेपथ्य की ओर घूम औ देख कर )

देखो वह को जल में अहई ।
कमल फूल खेलत सुख लहई ॥

नारद०—हां शांतिराम ! वेही अप्सरा हैं वे सब नन्दन बन का भी अनादर करके सर्व्वभयबर्जित, सदा-

(१) पर्वत पर उगने वाले ।

नन्दमय इस पर्वत पर इसी भांति सर्व्वदा जल विहारादि विलास के लिये भ्रमण करती हैं। अब चुप रहो गाना सुनो !

( नेपथ्य में गीत )

रागिनी भैरवी ताल जत्—

नलिनी यह नहीं प्रीतविधान।
निज पति अंक लगी नहिं कबहूं पर पति को सनमान।
तव मुख मधु बिनु भ्रमत गगन रबि मधुप करै रसपान॥
सती राज में बसत निरंतर असत रीति जिय ठान।
यह अनीत लखि लखि सब घर २ करत तेरो अपमान॥
यह कलंक तुम मिटै याहि बिधि उदित उपाय न आन।
हर गौरी पद पूजि ताहि तेहि पद पर करब प्रदान॥

शान्ति०—गीत सुनै तं उमगत गात।
भाव प्रगट आपुहि ह्वै जात॥
मधुर स्वरन सुनि ओंठ पर आवत गीत अनेक।
पागल की रसना चहै गान करै दुइ एक॥

गीत।

तनिक तू अपनी ओर निहार।
निज अपराध गनै नहि रज सम, औरहि जानु पहार।
नलिनी को असती तुम भाषत, निजकुल नाहिं बिचार।
चलनी हसत सूप के छेदहिं, अदभुत बिधि वेवहार॥

नार०—( सहास्य ) शांतिराम ! तुमने तो बहुत ही अच्छा गाया ! अब हमारी पारी है, इसी बीणायंत्र से शिवगुण गाते हुए चलो कैलासनाथ का दर्शन करके कृतार्थ होवें—

( नेपथ्य की ओर जाते है )

शांति० - सीधे पथ तुम चलहु गोसाई।
टेढ़ वेढ़ हम जानत नाहीं॥

नार० —देवता के सन्मुख हो कर नहीं जाना चाहिये शांतिराम। किनारे से हो कर चलना उचित है।

शांति०--एक बेर, इतना फेर ?

नार०—क्या करें ?

शांति०—उनके निकट पहुंचबै जबहीं।
तब का करब कहो तुम अबहीं॥

नार०—जाकर हाथ जोड़ प्रणाम कर के एक किनारे खड़े हो जाना, कुछ बोलना मत!

शांति०—जो जो कहो सबै कुछ करिहौं।
मुख बन्दी ह्वै मैं ना मरिहों॥

नार०—नहीं शांतिराम—यह तो कदापि नहीं होगा! तुम पागल हो! कहने को और, तुम कहोगे कुछ और वे सुन कर क्रोध करेंगे!

शांति०--यही तो नाथ काज की बेला।

काज बात में होय न मेला॥

काल्हि कह्यो तुम यों पंचानन।

पागल देखे तुष्ट होंहि मन।

सोइ साहस सों मैं चलि आवत।

अब क्यों छाती धक्का पावत॥

नार०—(सहास्य) नहीं—शांतिराम। कोई चिंता की बात नहीं है। जो भोलानाथ भूतनाथ स्वयम् पागल है, सो क्या तुमारे ऐसे पागलपने से रुष्ट होंगे?

शांति०—रुष्ट तुष्ट नहि एक बिचरिहों।

आसर पाय काज निज करिहों॥

प्रभु सेवक दोउ पागले सुख लखिहों भरि आंख।

चरन कमल गुण गाइहों और बजैहों कांख॥

जगत भाव से गाइब गाना।

नाचि निकट प्रभू राखब प्राना॥

गाल बजाय देब हम ताला।

खेंसि २ पडब बाघ की छाला॥

ताहू पर जो रखिहै आना।

जटा धरब अरु पकरब काना॥

[ दोनों का नेपथ्य की ओर प्रस्थान।

( नेपथ्य में बीणा के संग गीत )

( रागिनी टोड़ी ताल धीमा तिताला )

जै हर जै हर जै ससिसेखर । जै योगीश्वर, त्रिपुर-तनुहर सर्व्वगुणाकर स्वयम्भुशंकर ॥ व्याघ्र चर्मासन सुबेश कारी । वृषेशवाहन पिनाकधारी ॥ पिशाच मंडित श्मशानचारी । भूति विभूषित सतीश सुन्दर ॥ १ ॥

जै हर जै हर जै ससिसेखर ॥

व्योमै केश सिर पावन बारी । कैलास कानन शैल-बिहारी ॥ आशु तोष तुम कलुष प्रहारी । तुहि बाराणसि सरसि भास्कर ॥ २ ॥ जै हर जै हर जै ससिसेखर ।

( शिव के निकट नारद और शांतिराम का प्रवेश )

( नारद हाथ जोड़ कर स्तुति करते हैं )

जै भवेश भैरव, भवान्ध बान्धव भयार्त्त रैरव भीति हर ।
जै भवाब्धिभेलक, भूव्यादिपालक, सर्व्वभूतात्मक, भूतेश्वर॥
जै त्रिपुरतारक, त्रिपुरहारक, त्रिपरत्रानक, त्रिलोचन ।
जै त्रिदशबन्दित, त्रिगुणवर्ज्जित, तमोगुणान्वित निरंजन ॥
जै सर्व्वविधायक, सर्व्वसुरत्तक, सर्व्वसंहारक शुभंकर ।
जैयोगीजनार्चित,जगज्जनाश्रित,आत्मयोगान्वित,योगीश्वर॥
जैनित्यनिरुद्यम,निर्व्वेद,निर्म्मम,जितेन्द्रियोत्तम,कामांतक।
जै दुर्नीतिभंजक, दुर्गतिखंजक, श्रीदुर्गारंजक विनायक ॥
जै द्युलोकदुर्लभ, सल्लोकसल्लभ, भक्तस्वबल्लभ भक्ताश्रय ।
जै जन्मजराच्युत, इन्द्रब्रह्माच्युत, मृत्युपतिस्तुत, मृत्युंजय ॥

जै जटाजूटावृत, जन्हुकन्याधृत, पूतनीरामृत गंगाधर ।
जै पिनाकसायक, त्रिशूलधारक, शशांकभालक, दिगंबर ॥
जै व्याघ्रचर्मासन, भुजंगभूषण, वृषभवाहन, भूतिंधर ।
जै नीलनिभान्वित, शिरास्थिवेष्टित, कंठविभूषित मनोहर ॥
जै तंत्रप्रकाशक, यंत्रादिकारक, सुतानगायक, राजेश्वर ।
जै संगीतनायक, डिमडिमबादक, भोरंगघोषक, शृंगधर ॥
जै स्मशानगौरवे, पिशाचताण्डवे, कबन्धउत्सवे, म[illegible]त्साहि ।
जै शांतरसास्पद, पादशतच्छद ध्यायतिनारद, परित्राहि ॥

शिव०—(नेत्र खोलकर) कौन है—नारद, आओ २ बैठो ।

( शांतिराम पर दृष्टिपात )

नारद—(कर जोड़े) इसका नाम शांतिराम है, निष्क्रिय साधु, प्रकृतभक्त, विरक्त वैष्णव, प्रलापी शैव, दरिद्र सेवक, प्रभो ! ऐसा साथी पाकर कौन नहीं कृतार्थ होगा ?

शिव०—(सहास्य) तुमारी जैसी इच्छा ! कहो समाचार क्या है ?

नार०—प्रभु के आशीर्वाद से इस समय अमरावती उत्पात शून्य है, सुरलोक, चन्द्रलोक, ब्रह्मलोक, गोलोक, इत्यादि समभाव से हैं । शिवलोक में तो सब कुशल मगल है न ?

शिव०—( सहास्य ) भिक्षाजीवी का मंगलामंगल क्या ?

शांति०—है, है, है, नहीं तो नन्दी हम को निकट में क्यों नहीं आने देता था ?

शिव०—यह क्या कहता है ?

नार०—आने के समय नन्दी ने उस को रोका था, मेरे कहने से छोड़ दिया।

शिव०—शांतिराम क्या विक्षिप्त है ?

नार०—निर्लिप्त कहिये।

शांति०—किमि लिप्त नहीं जानौं गुप्त जो हृदये मांहि।
कोटि दोष कोउ देवे ताहि तजौं मैं नांह॥
( उचक कर गिरता और लोट जाता है )

शिव०—यह क्या ?

शांति०—कस विधि सुन्दर लिख्यो कपाला।
अस जगकर्ता भयो दयाला॥
( उठ कर नृत्य पूर्व्वक )
शांतिराम राजा के राजा।
नाचो बगल बजाओ बाजा॥
( कांख बजाता और नाचता है )

शिव०—( हर्ष पूर्व्वक ) शांतिराम तुम क्या चाहते हो ? जो चाहोगे सोई पाओगे।

शांति०—और क्या चाहेंगे, और क्या पावेंगे, चाहना पाना कुछ नहीं है, एक बात चाहते हैं—वही, वही, वही, लेंगे।

शिव०—सो क्या ? कहो।

शांति०—सोच यही एक रहत है सदा मोहि जिय मांह।

साधन पूजन भजन बिनु गांजा बने कि नांहि ॥

शिव०—तथास्तु !

शांति०—( नृत्य पूर्वक )—

शांतिराम तुम हो महराजा।

शुभ आसर में साध्यो गांजा ॥

गांजा के गुण साज सजाओ।

बम् बम् बम् बम् गाल बजाओ ॥

गोलोकहु में पैहों गांजा।

कैलासहु में लैहों गांजा ॥

जम कह खूब मजा देखराउब।

झट पट आपन गाल बजाउब ॥

नार०—( सहर्ष ) प्रभो ! यही तो संगी है—आशुतोष संज्ञा, जो बेद की उक्ति है ! अनेक दिनों पर आज साफल्य—और भक्तवात्सल्य के दर्शन से जीवन सार्थक हुआ ! अब अनुमति हो तो बिदा होंज !

शिव०—नारद ! इतनी जल्दी क्या है ?

नार०—जो आज्ञा ! बैठने का समय नहीं है—त्रिभुवन पर्य्यटन करना है !

शिव०—किस कार्य्य के निमित्त ?

नार०—महायज्ञ—( दांत से जीभ दबाकर धीमें स्वर से स्वगत ) अरे मैंने क्या किया, जो नहीं कहने को सोई कह दिया! ( प्रकाश्य ) जानते ही तो हैं कि घूमने फिरने की हमारी प्रकृतिही है!

शिव०—( सहास्य ) महायज्ञ! महानिमंत्रण! महा दुर्बुद्धि! महाव्यस्त! क्यों नारद! बात क्या है? क्या कैलास पर्वत त्रिभुवन में नहीं है?

नार०—प्रभु तो त्रिभुवन से परे हैं।

शि०—प्रभु तो परे हैं, कैलासनाथ तो नहीं। ऐश्वर्य्य में भाग है, क्या यज्ञ में भाग नहीं?

ना०—स्थानविशेष यज्ञ से भी परे है!

शि०—तो परे नहीं वंचित कहो! सो भी आज तक तो हुआ नहीं; यदि हुआ भी तो यही प्रथम है! किंतु ऐसा स्थान आज अकस्मात् कहां पाया? ऐसा निडर यज्ञकर्त्ता हठी कौन है?

ना०—जिसको पूरा चार चरण—जिसको पूर्ण अहंकार और कुकांक्षा हो!

शि०—उसके यज्ञ में, नारद व्रती—यही असम्भव है!

ना०—दर्पहारी भगवान की प्रेरणा—प्रयोजन दर्पचूर्ण!

शि०—तो झटपट हो!

ना०—यही मेरे जानेही का बिलंब है!

शि०—वह मनुष्य कौन है नारद ? और कारण क्या है ?

ना०—मनुष्य, बड़े भाई ! और कारण भृगुयज्ञ है !

शि०—( गंभीर भाव से ) सती के निमित्त चिंता है !

ना०—( सहास्य ) यह तो पहिले ही हमने कहा था, कि संसारी हो कर कोई निश्चिन्त नहीं रह सकता, तब तो कहा कि उससे दुख भी है सुख भी है; अब सुख देखो !

शि०—तो चिंता क्या है ? परंतु सती यह बात न सुने तो अच्छा है !

ना०—इच्छापूर्व्वक, सांप के मुंह पर कौन हाथ देगा ?

शि०—जो बक्ता है, उसी का भय है !

ना०—भय तो करने ही से होता है !

शि०—सो क्यों, क्या भय है ?

ना०—( शांतिराम से सहास्य ) शांतिराम ! क्यो नहीं बोलते ? जो मृतुञ्जय है उसको भी भय है—

शांति०—भय किसी से नहीं है—भक्त से भय है यदि वह रुष्ट हो जावे, और साधु से भय है यदि वह शाप देवे, अथवा कठोर बचन कहै, और हठ करने वाले से भी भय है यदि वह छीन लेवे।

( शीघ्रता से प्रस्थान )

ना०—शांतिराम ! ठहरो हम भी चलते हैं !